'ब्रह्म सत्यं जगत् स्फूर्तिः, जीवनं सत्यशोधनम्'

विनोबा-प्रवचन

(सप्ताह में तीन बार—मंगल, गुरु और शनि को प्रकाशित)

वर्ष ३, अंक १५१ | वाराणसी, गुरुवार, ३१ दिसम्बर, १९५९ | पचीस रुपया वार्षिक

प्रार्थना-प्रवचन

सिरसा (पंजाब) १६-१२-'५९

हिन्दुतान की संस्कृति शान्ति का उद्घोष करती है

दिसम्बर के दूसरे सप्ताह में अपने देश में अमेरिका के प्रेसीडेण्ट आइसन हॉवर, जिन्हें लोग आईक कहते हैं, आये थे। उनके स्वागत के लिए ८-१० लाख लोग जमा हुए थे। कुम्भ मेले का छोटा-सा दर्शन था। लोगों ने इतनी असामान्य श्रद्धा, इतनी भक्ति, इतनी उत्सुकता क्यों बतायी, यह सोचने की बात है। अमेरिका के प्रेसीडेण्ट याने दुनिया के एक सबसे बड़े शक्तिशाली देश के प्रतिनिधि, इस नाते लोगों ने उनका इतना बड़ा स्वागत किया हो तो वे उस गौरव के पात्र ही थे। लेकिन जो इतनी सारी जनता उमड़ पड़ी, वह इसलिए नहीं कि वे बहुत बड़े देश के प्रतिनिधि हैं, बल्कि इसीलिए कि आइक ने इन दिनों शांति का झंडा उठाया है। शांतिदूत के नाते उन्होंने अभी ख्रुश्चेव से बात की और उसी नाते वे दुनिया में घूम रहे हैं।

इस देश में शांति की भावना नयी नहीं है। हमारे देश में "शांतिः शांतिः शांतिः" की घोषणा हम करते हैं। दस हजार साल से जहाँ तक हम इतिहास जानते हैं, यह मन्त्रघोष आज तक जारी है।

हिन्दुस्तान में आनेवाली मुख्तलिफ जमातें

हिन्दुस्तान ऐसा देश है, जहाँ मुख्तलिफ कौमें आयीं और उनका खुले दिल से स्वागत किया गया। लोगों का यह खयाल गलत है कि हिन्दुस्तान में जितनी कौमें आयीं, वे हमलावर होकर आयीं। कुछ तो हमलावर होकर आयीं, लेकिन बहुत-सी आश्रित बनकर आयी थीं। केरल में ईसा की मृत्यु के बाद सत्तर-अस्सी साल के अन्दर-अन्दर सेंट टॉमस आये थे। ईसाई धर्म हिन्दुस्तान में पहले आया। उसके तीन-चार सौ साल बाद यूरोप में फैला। सेंट टॉमस का केरल के लोगों ने बहुत प्यार से स्वागत किया। उनको बहुत प्यार से रखा। मैं कन्याकुमारी गया था। कन्याकुमारी हमारी देवता है। वह गिरिजा है। शिवजी की प्राप्ति के लिए वह वहाँ तपस्या कर रही है। इधर कैलाश पर शिवजी बैठे हैं। ऐसी एक विचित्र अनुभूति सारे भारत की है। यहाँ पहले (प्रथम) जो ईसाई आये, वे रोमन कैथोलिक थे। उस वक्त प्रोटेस्टेंट वगैरह पंथ नहीं था। यहाँ आनेवाले रोमन कैथोलिक माता मेरी को लेकर आये थे। मेरी का असली नाम मरियम है। यूरोपके लोग उसे मेरी कहते हैं। वे उसकी पूजा करते थे। हमारे लोगों ने समझा, भगवान शिवजी की उपासना करनेवाली वह पार्वती ही है। इसीलिए हिन्दी में चर्च, मरियम के मंदिर को गिरजा घर कहते हैं। मैं जब कन्याकुमारी गया, तब वहाँ के ईसाइयों ने मुझसे कहा "यह कन्याकुमारी शब्द तो बाद में आया है। कन्यकामेरी से कन्याकुमारी शब्द निकला।" उसके पहले ईसाई शब्द था कन्यकामेरी। यह सुनकर मुझे अच्छा लगा। चाहे कन्याकुमारी से कन्यकामेरी निकला हो या 'कन्यकामेरी' से कन्याकुमारी बना हो, पर इतना जरूर है कि वे लोग इतने घुल-मिल गये थे कि वहाँके हिन्दू लोग महसूस नहीं करते थे कि ये कोई दूसरे लोग हैं। वैसे ही पारसी कौम यहाँ आयी। किसी तरह की तकलीफ हमने उनको नहीं दी। हिन्दुओं के देवताओं को पारसी गाली देते थे। फिर भी यहाँके लोगों ने शान्ति से बरदास्त किया। गाली देते थे, यह मेरा विनोद है। पारसी लोग 'दैव' से भूत, 'पिशाच', 'राक्षस' समझते हैं और उनकी भाषा में परमेश्वर को असुर कहते हैं। "असुर" पर से ही "अहुरमज्द" बना है। याने "असुरमहान"। यह "असुर" शब्द परमेश्वरवाचक अर्थ में वेद में भी मिलता है। "महद् वेदना असुरत्वमेकम्।" इसी तरह यहाँ यहूदी लोग आये। "हूदा" याने जिनको हिदायत मिल चुकी है या जिनको बोध प्राप्त हुआ है। उनको अरबी-फारसी में हूदा कहते हैं। जैसे अपने यहाँ बुद्ध हो गये। वे लोग बम्बई के किनारे बेन-इजराइल जमात के नाम से बसे हैं। वैसे ही यहाँ ग्रीक आये, जिनको हम "यवन" कहते हैं। "यवन" याने "आयोनियन"। मुगल आये, चीनी आये, तातार आये। कौन नहीं आये, यही सवाल है।

जातिभेद का रहस्य

इतनी सारी अलग-अलग कौमें यहाँ आयीं। हमारे यहाँ जो अलग-अलग जातियाँ बनीं, वे भी "जीओ और जीने दो" (लिव एण्ड लेट लिव) के लिए बनीं। आज उनका रूप बिगड़ गया है। अब उनको खत्म करना जरूरी है। लेकिन जब जातियाँ बनीं, उस वक्त हरएक कौम का रहन-सहन, खाना-पीना संस्कार अलग-अलग थे। फिर भी उनको समुद्र में ढकेल देने की बजाय

यहीं प्रेम से रखा। इसलिए यहाँ जो जाति-भेद बना, वह भेद-भावना के कारण नहीं बना, प्रेम के कारण बना था। सहजीवन के लिए बना था। लेकिन कभी-कभी सहजीवन भी तकलीफ देने लगता है। जाति-भेद भी आज तकलीफ दे रहा है। इसलिए उसको मिटाना जरूरी है।

आज की ही बात। मेरे जूते में कंकड़ आया। मैंने उसके साथ "सह-अस्तित्व" चलाया। है बेचारा जूते के एकाध कोने में पाँव को ज्यादा तकलीफदेह तो हो गया, पर आश्रय के लिए आया है तो रहे। थोड़ी देर बाद बहुत तकलीफ होने लगी। मैंने कहा, अब "सहअस्तित्व" नहीं चलता, निकाल दो उसको। यहाँ जो जाति-भेद है, वह अच्छी नियत से बर्दाश्त किया। हिन्दुस्तान का जाति-भेद दुनिया को आश्चर्य में डालता है। वे लोग सोचते हैं, जहाँसे अद्वैत निकला, वहाँ जाति-भेद कैसा? उनके लिए यह आश्चर्य की बात है। लेकिन हमारा अद्वैत हमको सिखाता है—सबसे प्रेम करो। उनका अपना-अपना व्यवहार भले ही अलग-अलग रहे, कोई हर्ज नहीं। इसलिए हमारा जाति-भेद अद्वैत के खिलाफ नहीं था, अद्वैत के अनुकूल ही था।

भारत का वैशिष्ट्य

दूसरी बात यह है कि सारी दुनिया के इतिहास में कहीं नहीं दिखाई देती, वैसी घटना यहाँ हुई है। यहाँके लोग जब अपने ऐश्वर्य के शिखर पर थे, तब चाहे वह समुद्रगुप्त का जमाना रहा हो, सम्राट अशोक का या श्री हर्ष का जमाना रहा हो, इस समाज के महान नेता पैदा हुए। लेकिन उन्होंने हिन्दुस्तान के किसी देश पर कभी हमला नहीं किया। यह घटना इत्तफाक से नहीं हुई। इसमें हिन्दुस्तान का स्वभाव छिपा है। यह "हिन्दुस्तान" यदि आधुनिक भाषा में कहें तो अन्तर्राष्ट्रीय (इंटरनॅशनल) देश है। यह अपने में एक व्यापक विश्व ही है। यहाँके लोगों के पास ऐसे कोई साधन नहीं थे, जिससे दूसरे देशों के साथ सम्बन्ध कराते। तब भी यहाँसे भाषा निकली—"विश्वमानुष"। यहाँके लोगों से सबको तालीम मिले, ऐसी अपेक्षा रखी गयी।

"एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

पृथ्वी के सर्व मानव यहाँसे कुछ तालीम पाते रहें, ऐसा मनु महाराज ने कहा। याने उस जमाने में भी "विश्व" से कम शब्द इस्तेमाल नहीं किया गया। "विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम्"—हमारे गाँव परिपुष्ट विश्व बनें। इसमें कोई संदेह नहीं कि शांति की भावना इस देश की रगरग में भरी है। जब पाकिस्तान हिन्दुस्तान बना, तब जो कुछ हुआ, उससे हमको शर्म मालूम होती है। ऐसी गलत करतूतें हमने की हैं। फिर भी इस देश के मूल स्वभाव में शांति की चाह है।

और एक बड़ी बात यहाँ यह हुई है कि दुनिया में यही देश है, जहाँके लोगों ने बहुत पहले मांसाहार-परित्याग का व्यापक प्रयोग किया। जबकि यूरोप, अमेरिका में अभी-अभी उसका आरम्भ हो रहा है।

यह सारा मैंने इसलिए कहा कि "आईक" का स्वागत यहाँ के लोगों ने इसलिए किया कि हिन्दुस्तान की सभ्यता ने जो मंत्र माना, उसका उच्चारण उस भले मनुष्य ने किया। इसलिए लोगों को लगा कि यह अपना ही आदमी है। आईक चाहते हैं, दुनिया में शस्त्र-संन्यास हो। जो अणु शस्त्र बने हैं, उनपर पाबन्दी लगे। शस्त्रास्त्र कम हों। लेकिन सोचने की बात है, यह किस तरह होगा? उसके लिए दुनिया ने एक औजार बनाया है, जिसको "यू. एन. ओ." संयुक्त राष्ट्र-परिषद् कहते हैं। वहाँ सब राष्ट्रों के प्रतिनिधि इकट्ठा बैठकर दुनिया के मसलों पर सोचते हैं।

हिन्दुस्तान और चीन के बीच की 'अनबन'

फिर क्या बात है कि शांति के मंत्र का अमल नहीं होता। अभी-अभी हिन्दुस्तान और चीन के बीच अनबन हुई है। मैंने जानबूझकर अनबन कहा है। मैं नहीं मानता कि इससे ज्यादा कुछ बना है। हिमालय ने पुराने जमाने में दोनों को अलग रखा था। हम समझते थे, हिमालय हमारी रक्षा करता है। अब वह रक्षा नहीं रही। इस जमाने में किसी प्रकार के पहाड़, दीवाल, तट, किले से रक्षा होनेवाली नहीं है। इसके आगे रक्षा अन्दर से आयेगी। उसी दिशा में विज्ञान भी जोर से बढ़ रहा है। परिस्थिति में अनुकूलता हो रही है। मैंने कई बार कहा है कि एक जमाने में पहाड़, समुद्र, जड़ पदार्थ देशों को तोड़ने का काम करते थे, वे आज जोड़ने का काम करते हैं। इसलिए इसके आगे चीन और हिन्दुस्तान के बीच प्रेम होनेवाला है। उस प्रेम-संबंध के आरम्भ में अनबन हुई है। उसमें से "अन" निकल जायगी और "बन" ही रहेगी। याने आखिर में दोनों का बनेगा। इस बात को हम रोजमर्रा के व्यवहार में देखते हैं। हिन्दुस्तान के लोग प्रेमी हैं, स्वागत करना अच्छी तरह जानते हैं। बावजूद इसके ट्रेन में क्या होता है? अन्दर किसीको आने नहीं देते। आप जरा अपना पुरुषार्थ दिखाकर अन्दर घुस ही जायँ तो फिर आपको खड़ा होना पड़ता है। उतने में गाड़ी खुलती है। फिर कोई भला मनुष्य थोड़ी जगह देता है और कहता है, आओ भाई, बैठो। यह तो रोजमर्रा की बात है। आरम्भ में ऐसा थोड़ा झगड़ा होता है। उसीमें से प्रेम होता है। मैं तो जानता नहीं, पर मेरा खयाल है कि माता के स्तन को बच्चा जब प्रथम स्पर्श करता है, तब थोड़ी तकलीफ तो होती ही होगी। लेकिन उसीसे प्यार बनता है। इसलिए चीन और भारत की इस अनबन को मैं ज्यादा महत्त्व नहीं देता।

भीष्म द्रोण की-सी हालत

कुछ लोगों ने नाहक हल्ला मचाया है। कहते हैं, सरकार को अपनी पॉलिसी (नीति) बदलनी चाहिए। अच्छी तैयारी करनी चाहिए। यहाँ तक कि राजाजी भी, जो कि महान हैं और व्यापक दृष्टि रखनेवाले हैं, कहते हैं हमको दूसरे देशों से फौजी मदद लेनी चाहिए और हमारी "नॉन-अलाइनमेण्ट" तटस्थता की जो पॉलिसी बनी है, वह ठीक है, पर दूसरे देशों के साथ मिलन करना गलत नहीं है। मैं तो समझता हूँ "भीष्म, द्रोण, बिदुर भये विस्मित।" ऐसी हालत है। द्रौपदी पर धर्मराज युधिष्ठिर का हक है कि नहीं, यह सवाल खड़ा हुआ। वे भीष्म, द्रोण, विदुर राजाजी से ज्यादा अक्लवाले थे, यह तो राजाजी भी मानेंगे। पर वे भी जवाब नहीं दे सके। आज एक बच्चा भी कहेगा कि वह क्या बड़ा मसला था? पत्नी पर भी किसीका हक हो सकता है? क्या वह कोई संपत्ति है? लेकिन उस जमाने के बड़े-बड़े लोग भी उसका जवाब नहीं दे सके थे। बात ऐसी है कि बड़े लोगों में चिन्तन-मोह हो जाता है। वे नाहक समझते हैं कि हमारे सिर पर बड़ी जिम्मेवारी है। असली जिम्मेवारी उठानेवाला परमेश्वर है, यह वे भूल जाते हैं। इसलिए ऐसा चिन्तन निकलता है। ऐसे मौके पर छोटे लोग बचते हैं। क्योंकि छोटे बोझ से मुक्त होते हैं। इसलिए मैं मानता हूँ कि चीन और

हिन्दुस्तान का यह प्रथम प्रत्यक्ष संपर्क है। इससे ज्यादा महत्त्व मैं उसको नहीं देता। ताली बजती है तो कभी-कभी बायें हाथ पर दाहिना हाथ जोर से पड़ता है। तब क्या हम ऐसा समझते हैं कि दाहिना हाथ बायें हाथ से दुश्मनी करता है? इस समय चीन ने जो संपर्क किया है, उससे घबड़ाने की जरूरत नहीं है। चीन इतना बेवकूफ तो नहीं है कि चारों ओर दुश्मनी बढ़ाता जायगा।

मंत्र का मनन हो

आईक ने शान्ति की घोषणा तो की, पर शान्ति में एक कील ठोक दी। शान्ति में रोड़ा डाल दिया। "यू० एन० ओ०" में चीन को दाखिल नहीं होने दिया। हिन्दुस्तान ने तो चीन का समर्थन किया है। अब इंगलैण्ड भी करने लगा है। लेकिन अमेरिका अब भी खिलाफ है। ताज्जुब है कि दुनिया के लोग जहाँ इकट्ठा बैठकर शान्ति के बारे में सोचते हैं, वहाँ चीन जैसे इतने बड़े देश को बैठने का मौका नहीं दिया जाता! उसको शान्ति के बारे में सोचने का मौका देने के बजाय कलह बढ़ाने का मौका दिया है! आईक ने तो शान्ति का मन्त्र पढ़ा, पर अब उसका वह मनन करेगा, ऐसी मैं आशा करता हूँ। मनन से ही मंत्र बनता है। आईक मनन नहीं करेगा तो मंत्र ही नहीं रहेगा।

> लोग कहते हैं, हिन्दुस्तान ने चीन पर उपकार किया, फिर भी चीन ने हिन्दुस्तान से झगड़ा किया। वे समझते नहीं। हमने चीन पर कोई उपकार नहीं किया। हम अपना और दुनिया का एक कर्तव्य पूरा कर रहे हैं। मैं आशा करता हूँ, आगे इसपर विचार होगा और शांति की राह खुलेगी। चीन की बनिस्बत हमें अपनी नीति बदलने की कोई जरूरत नहीं है।

गांधी एक ऐतिहासिक आवश्यकता

हिन्दुस्तान के लोग 'शान्तिः शान्तिः' कहते हैं, फिर भी उनमें भय है। इसका एक बड़ा कारण है। अंग्रेज यहाँ आये तो उन्होंने एक अद्वितीय कर्तव्य किया, जो दुनिया में किसीने किसी देश में नहीं किया था। अंग्रेजों ने यहाँकी जनता को निःशस्त्र बनाया, ताकि इस देश पर राज्य करना आसान हो। ऐसा पहले किसी राजा ने कहीं नहीं किया था। उसका एक कारण तो यह था कि किसी राजा में उतनी ताकत ही नहीं थी और दूसरा कारण यह था कि वे प्रजा को निःशस्त्र करते और कहीं बाहर से आक्रमण होता तो प्रजा की रक्षा करना उनके लिए कतई सम्भव नहीं था। लेकिन अंग्रेजों ने यह करामात की। अंग्रेजों ने कुछ अच्छी करामात की और कुछ गलत करामातें भी कीं। यह उनकी गलत करामात थी। नतीजा यह हुआ कि जिनके हाथ से शस्त्र छीने गये, उन लोगों में कायरता आ गयी। उनको शस्त्रों के लिए आकर्षण रहा। हालाँ कि उनकी इसी करामात के कारण गांधीजी का काम इस देश में हो सका। उस परिस्थिति में या तो लोग हमेशा के लिए अंग्रेजों के गुलाम बने रहते या कोई नया बलवान शस्त्र ढूँढ़ निकालते। इतने बड़े देश का कायम के लिए गुलाम रहना असम्भव बात थी। इसलिए कोई नया बलवान शस्त्र खोजने की "हिस्टॉरिकल नेसेसिटी" (ऐतिहासिक आवश्यकता) पैदा हुई थी। उसीमें से महात्मा गांधी आये। वे न आते तो दूसरा कोई आता। उनका शिक्षण और वे जिस जमात से आये थे, उस संस्कार की दृष्टि से गांधीजी का आना ही स्वाभाविक था। पर इतने बड़े प्राचीन देश को कायम के लिए गुलाम रखना नामुमकीन था। इसलिए नये शस्त्र का शोध जरूरी था। "नेसेसिटी इज दी मदर ऑफ इन्वेन्शन" (आवश्यकता शोधों की जननी है) ऐसी अंग्रेजी कहावत है। उसी आवश्यकता ने गांधीजी को पैदा किया।

गांधीजी के मार्ग-दर्शन में हिन्दुस्तान में अहिंसा की लड़ाई चली। उस वक्त हमने टूटी-फूटी अहिंसा का पालन किया। उसके परिणामस्वरूप स्वराज्य आया। फिर हमने महसूस नहीं किया कि अहिंसा से हमने स्वराज्य हासलि किया। इसके कारण अहिंसा का वह मजा खत्म हो गया। किसी हिंसक लड़ाई में जो बुराइयाँ की जाती हैं, उससे कम बुराइयाँ हमने नहीं कीं याने हमारी अहिंसा लाचारी की अहिंसा थी, बावजूद इसके कि गांधीजी ने हमको वीरों की अहिंसा सिखाने की कोशिश की थी।

उज्ज्वल प्रसंग

आज चीन की वजह से लोग डरते हैं और कहते हैं कि हमको तैयारी करनी होगी, सेना रखनी होगी, शस्त्र तैयार करने होंगे। लेकिन पंडित नेहरू एक ही नेता हैं, जो कहते हैं, डरो मत। लड़ाई इस तरह लड़ी नहीं जाती। आज दुनिया में जागतिक युद्ध करने की किसीकी हिम्मत नहीं है। कोई हिम्मत करेगा ही नहीं। इस तरह वह अकेला शख्स बोल रहा है। मेरी उस शख्स के साथ पूरी सहानुभूति है। इस वक्त गांधीजी के बहुत सारे साथी भी कह रहे हैं कि देश को दूसरी नीति पर ले जाना चाहिए। पर वह शख्स कहता है, मैं हिन्दुस्तान की परिस्थिति अच्छी तरह जानता हूँ। यहाँके लोगों की नब्ज पर मेरा हाथ है। अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति भी मैं अच्छी तरह जानता हूँ। तुम डरो मत। मैं मानता हूँ, पंडित नेहरू के जीवन में सबसे अधिक उज्ज्वल और गौरव का यह प्रसंग है। ७० साल की उनकी उम्र हुई है। हमारे यहाँ कहते हैं। "साठी बुद्धि नाठी" लेकिन उनकी बुद्धि साबित है। उतनी ही उम्र जिनकी हुई है, उनकी बुद्धि डगमगा गयी है। इस प्रसंग में मुझे धन्यता का अनुभव होता है। लगता है कि गांधीजी जिन्दा हैं। जो मैं कह रहा हूँ, वह पंडित नेहरू की महत्ता बढ़ाने के लिए नहीं कह रहा हूँ। इस वक्त चारों ओर से नेहरू पर हमला हो रहा है। जो उठा सो सियासत को महत्त्व दे रहा है। सामाजिक दृष्टि से या विज्ञान की दृष्टि से कोई सोचता ही नहीं। सब सियासत के खयाल से सोचते हैं। सियासत को इतिहास के ज्ञान का बोझ हो रहा है। होना तो यह चाहिए, उसका बोझ न हो। मैंने कश्मीर में कहा था कि किसी ग्रंथ का भार मैं नहीं उठाऊँगा। हम संतरा खाते हैं तो उसमें से क्या खाते हैं? सिर्फ रस लेते हैं। ऊपर का छिलका फेंक देते हैं, अन्दर का बीज भी निकाल देते हैं। मेरी निगाह में जो सर्वोत्तम है, वही मैं लेता हूँ। यही मैं पुराने ग्रंथों के बारे में और इतिहास के बारे में कहता हूँ। जो अनुभव लेने लायक है, वही मैं लूँगा। इतिहास को हमारी भाषा में "भूत" कहते हैं। यह "भूत" हमारी छाती पर याने वर्तमान पर बैठेगा तो इससे भयानक "भूत" दूसरा नहीं होगा। सारा इतिहास "बैलैंस ऑफ पॉवर" (शक्ति के संतुलन) पर आधारित है। उसे पढ़-पढ़कर विद्वान डगमगा रहे हैं। नेहरू वर्तमान के लिए अनुकूल जागरूकता बुद्धिमानी और कार्यदक्षता दिखा रहे हैं। अब हमको क्या करना चाहिए, इसपर हमको सोचना चाहिए।

• • •

गो-सेवा-समिति की बैठक में [सिरमा (पंजाब) १६-१२-'५९

गो-सेवा के लिए जीवन-पद्धति में अन्तर करना आवश्यक !

इस जमाने में हिन्दुस्तान के पास अपनी कई खास चीजें हैं। अगर हम मानते हैं तो उन्हें इस जमाने की भाषा में समझाना चाहिए। उसमें दो बातें सामने आनी चाहिए। एक है साइंस और दूसरी है अर्थशास्त्र। जहाँ तक अर्थ का सवाल है, उसे अर्थशास्त्र की भाषा में समझाना चाहिए और जहाँ तक कार्य-पद्धति का सवाल है, उसे विज्ञान की भाषा में समझाना चाहिए।

अर्थशास्त्र का विचार

अर्थशास्त्र का विचार एक अर्थ में हमारे हाथ का काम है। उसको हम जैसा चाहें, वैसा मोड़ दे सकते हैं। हिन्दुस्तान की खास परिस्थिति है। यहाँ मनुष्य-शक्ति बहुत है। जमीन कम है, मनुष्य-संख्या बढ़ ही रही है। यहाँकी अपनी एक सभ्यता है। उन सबको खयाल में रखकर ही साइन्स और एकॉनॉमिक्स आगे बढ़ेगा। मनुष्य-स्वभाव ध्यान में लिये बिना और समाज के स्वभाव का चिन्तन किये बिना अर्थशास्त्र का विचार कभी हो ही नहीं सकता। अर्थशास्त्र में मनुष्य, कर्ता एक "फैक्टर" माना जाता है। इसलिए मनुष्य के संस्कार भी एक "फैक्टर" हैं। इसलिए यह जो झिझक है कि पुराने विचार नहीं लेने चाहिए, यह अर्थशास्त्र कभी नहीं मानेगा। मनुष्य के जीवन का विचार करते हैं तो उसके स्वभाव को ध्यान में लेना होगा। उसकी भावना का भी समावेश अर्थ-शास्त्र में होता है, यह बिना झिझक हमको कहना चाहिए। कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यम्—यह जो क्रम बताया है, वह कोई कविता के लिए नहीं है। अर्थशास्त्र की खोज करने पर ही ध्यान में आयेगा कि पहले कृषि और बाद में गाय, फिर वे पशु, जो सब तरह से उपयोगी हैं। इस ढंग से हम समाज की व्यवस्था चलायेंगे, तभी सही पद्धति विकसित होगी।

गाय का विरोधी मनुष्य है

उसी तरह साइन्स की दृष्टि से हमको सोचना होगा कि पशुओं के साथ कैसे बरतना है। सिर्फ गाय का ही नहीं, दूसरे पशुओं का भी हमारे जीवन में स्थान है। मेरा मानना है कि मनुष्य-वृद्धि पशुओं के खिलाफ जायगी। मुझे तो गाय के विरोध में भैंस नहीं दिखाई देती, मनुष्य ही दिखाई देता है। मनुष्य अपनी वासनाओं पर अंकुश नहीं रखेगा, भोग में ही आनन्द मानेगा तो मानवता के विकास के बजाय प्राणी-संख्या बढ़ती जायगी। फिर वह सब प्राणियों के साथ झगड़ा करता रहेगा। सब प्राणियों के साथ उसे जुड़ जाना चाहिए। इसलिए साइन्स के साथ रूहानियत का खयाल करना ही होगा। दूसरे प्राणियों के साथ अपना सम्बन्ध जुड़ा लेना इसीमें मनुष्य के जीवन का आनन्द है। यदि घोड़ा गया और उसकी जगह यन्त्र आया तो उसमें कोई हर्ज नहीं। फिर भी हमारे साथ भी घोड़ा रहे, उसमें मानव-जीवन का एक बड़ा आनन्द है। घोड़ा जायगा तो साइन्स की मर्यादा मानव ने छोड़ी, ऐसा होगा। साइन्स संहार की शक्ति पैदा करता है और संरक्षण-शक्ति भी पैदा करता है। हम चाहते हैं, साइन्स संरक्षण की शक्ति पैदा करे और उसको मार्गदर्शन देने के लिए दूसरी शक्ति हो। वह शक्ति रूहानियत ही हो सकती है। इसलिए समाज को समझाना होगा कि गो-सेवा के साथ-साथ घोड़ा आदि पशु रहेंगे, उसमें मानव-जीवन की समृद्धि है। मानव-जीवन पूर्ण बनता है। इसलिए रूहानियत का अंकुश साइंस को कबूल करना होगा। हम साइंस की प्रगति रोकने की बात नहीं करते। साइन्स को योग्य मार्ग-दर्शन मिले, यही चाहते हैं।

हमें दो बातें समझनी होंगी। एक तो यह कि अर्थशास्त्र के अन्दर भावना भी आती है। अर्थशास्त्र का वह एक चेप्टर ही है और दूसरी साइंस को भी "रीजेनेरेट" करने की जरूरत है। वह नहीं होगा तो नुकसान होगा। ये दो बातें हम समझ जायँगे तो आधुनिक लोगों के मन में जो "प्रेज्युडिसेस" (पूर्व ग्रह) हैं, उससे भी स्पष्ट शब्दों में कहा जाय तो "सुपरस्टीशन्स" (मूढ विश्वास) हैं—जो कि उनके मन में सही हैं—उनका समाधान कर सकेंगे। इन दो बातों के साथ-साथ लोगों को समझना चाहिए कि अपने ऊपर अंकुश रखो। संयम रखने की जरूरत है। आज गाय याने उसकी सेवा करनी है, यह खयाल हिन्दुस्तान में करीब-करीब नहीं है।

डालडा न तेल है, न घी

जो कोई भी सरकार जनमत पर चलेगी, वह गाय जैसी बातों में उपेक्षावृत्ति कभी नहीं रख सकेगी। यह हो सकता है कि उसका इस तरफ ध्यान कम होगा या उस बात में उसको समझ कम होगी। इसलिए उसको समझाने की कोशिश करनी चाहिए। मेरा मानना है कि वे समझ जायँगे। सरकार के साथ अच्छा ताल्लुक रखकर उसको अच्छा "शेप" देना हमारा काम है। पर आज इस ओर लोक-प्रयत्न नहीं होता। इस समय या तो लोग सरकार को निन्दित करते हैं या सब सरकार को सौंप देते हैं। अब 'डालडा' की बात है। बावजूद इसके कि मांस सस्ता था, करोड़ों लोगों ने यहाँ मांस छोड़ा। ऐसा दुनिया में कहीं भी नहीं हुआ। उसमें सरकार की तरफ से कोई आधार नहीं था। लेकिन वह बात बनी। इसी तरह मुझे लगता है कि खुले तौर पर 'डालडा' आता है, फिर भी लोग नहीं लेते, ऐसा होना चाहिए। पर हम पराक्रम-शक्ति खो बैठे हैं।

> हमें लोगों को समझाना चाहिए कि भाई, तुम 'डालडा' लेते हो तो तुम तेल भी नहीं लेते हो और घी भी नहीं लेते हो! वह घी तो है नहीं। तेल है तो फिर ताजा तेल ही क्यों नहीं लेते हो? पैसा देते हो तो घी से कम पैसा देना पड़ता है, पर तेल से ज्यादा देना पड़ता है। उसके बदले में ताजा तेल मिले तो उसमें गुण है। वैद्यक-शास्त्र में कहा है कि तेल में भी विशेष गुण हैं। वह गुण 'डालडा' में नहीं है। उसमें सिर्फ दर्शन है। वह न तो तेल है और न घी ही है।

मैं बड़ोदा में पढ़ता था। स्कूल से आते समय रास्ते में हम देखते थे कि एक ब्राह्मण का लड़का लकड़ी की तकली पर जनेऊ के लिए सूत कातता था। मैंने तकली को पुराना खंडहर ही नाम दिया था। अपने साथियों से कहता था, यह पुराना खंडहर क्या इस जमाने में चलेगा? वही मैं गांधीजी के कारण तकली पर

घंटों कातता रहा। कभी याद आती थी कि बचपन में मैं उस लड़के की हँसी उड़ाता था, पर अब मैं वही कर रहा हूँ। किसीको खयाल था कि सूत कातने की नौबत आयेगी? वह तरीका "आउट ऑफ डेट" हुआ था। यह तो गांधीजी की प्रतिभा ही थी, जिसका आपको दर्शन हुआ। वे डरे नहीं। विचार की लहर पैदा की।

जनता में 'डालडा' के खिलाफ भावना पैदा करनी चाहिए। भैंस से गाय का ज्यादा प्रतिस्पर्धी 'डालडा' है। राजस्थान में पहले डालडा नहीं आता था, पर अब तो वहाँ भी उसका प्रवेश होने लगा है। इसलिए हमको यह बात सरकार को भी समझानी होगी और लोकमत भी तैयार करना होगा।

गोबर न जलायें

दूसरी बात यह है कि यहाँ गोबर जलाया जाता है। बहुत दिन से मैं इसपर सोचता हूँ। मुझे बहुत दुःख होता है। घर लीपने वगैरह में भी गोबर का उपयोग होता है, पर वह बहुत थोड़ा होता है, किन्तु जो जलाया जाता है, वह तो भयानक ही है। लेकिन मुझे भी सूझता नहीं कि उसके बदले में क्या दिया जाय? मुझे बताया गया है कि गोबर का अगर गैस बनाते हैं तो गैस बनने के बाद भी गोबर की खाद की शक्ति कम नहीं होती, बल्कि कुछ बढ़ती है। कुछ भी हो, गोबर जलाने के काम में न आये, ऐसी कोशिश करना भी गो-सेवा ही है।

दूध का उपयोग

तीसरी बात यह है कि हिन्दुस्तान में दूध बहुत कम है। इसलिए हम उसे बच्चे, बीमार और बूढ़े—इस क्रम से बाँटते हैं। इतना कम दूध होते हुए भी दूध की मिठाई बनती है। उसको तो मैं "क्राइम" मानता हूँ। उसपर न सरकार सोचती है, न लोग सोचते हैं। इस तरफ भी लोगों का और सरकार का ध्यान खींचना चाहिए। दूध की मिठाई बनाने से देश का बहुत नुकसान होता है। एक बार गुरुदेव के पास गांधीजी गये थे। उस वक्त गुरुदेव पूरी-भाजी ही खाते थे। गांधीजी ने कहा: घी में पूरी बनाकर खाना "प्वाइजन" है। गुरुदेव ने कहा, शायद "स्लो प्वाइजन" होगा। क्योंकि मैं सालों से खाता हूँ। उस तरह मिठाई के बारे में मैं नहीं कहता। उसका भी फायदा हो सकता है। अगर दूध काफी मात्रा में होता तो किसीको बहुत मजबूत बनाने के लिए मिठाई बनायी जाती तो ठीक था। लेकिन आज तो देश में दूध कम है। आप लोगों ने कुछ विचार किया है और कुछ योजना भी बनायी है, अच्छा है। बिना योजना बनाये हम अगर काम करते ही चले जायँगे तो काम ठीक से नहीं होगा। यह निश्चित है कि गाय अपनी शक्ति बढ़ानेवाली है। इसलिए आज की परिस्थिति में दूध की मिठाई बनाना सर्वथा अहितकर है।

गाय को क्या खिलायें?

गाय के साथ और खेती के साथ ग्रामोद्योग भी जुड़े हुए हैं। गाय का दूध बढ़ाने के लिए जो भी कुछ हम करते हैं, उसमें मुख्य बात यह है कि हम उसको क्या खिलाते हैं? किसान गाय को क्या देकर दूध बढ़ा सकता है, यह ध्यान में रखना चाहिए। दूध बढाने के लिए बिनौला या खली देना है, यह तो ठीक है। पर क्या गाँव में इतनी खली निकलेगी? और इतनी खली के लिए ज्यादा तिलहन बोना ठीक होगा? इसपर भी हमको सोचना चाहिए। नस्ल-सुधार करना है तो गाय के लिए "आइडियल कंडीशन" ठीक है। लेकिन गाय जनता के लिए तभी उपयुक्त होगी, जब जनता आज जिस हालत में है, उस हालत के अनुकूल गाय को खिलाने के लिए कुछ चीजें हम सुझा सकेंगे।

इन दिनों शहर बढ़ते जा रहे हैं। यह हमारे हित में नहीं है और गाय के हित में भी नहीं है। जितने शहर बढ़ेंगे, उतनी गाय और खेत की सेवा किये बिना लाभ उठानेवाली जमात बढ़ेगी। फिर शहरों को दूध "सप्लाई" करने की कोशिश की जाती है। फिर सारा दूध शहरों में "ड्रेन" किया जाता है। इसलिए वहाँ भी मर्यादा बाँधनी होगी। जिस प्रदेश में दूध होता है, वहाँ कुछ निश्चित मात्रा में दूध रहना ही चाहिए। दूध के दाम मिलते हैं, इसीलिए सारा दूध शहरों में जाता होगा। फिर भी मर्यादा बाँधना आवश्यक है। अगर किसान के लड़कों को दूध नहीं मिलेगा तो वे कमजोर बनेंगे। वर्धावालों ने तय किया है कि वर्धा शहर में गाय का ही दूध इस्तेमाल करेंगे। वर्धा में सारा दूध आने लगेगा तो वह सारा नागपुर में भी जा सकता है। क्योंकि नागपुर अभी राजधानी होनेवाली है, ऐसा कहा जाता है। इसलिए आपकी योजना का लाभ पूरा मिले, ऐसा अगर आप चाहते हैं तो देहातवालों का फायदा न बिगड़े, वैसा काम होना चाहिए। ● ● ●

गो-सेवा-समिति की बैठक में

सिरसा (पंजाब) १७-१२-'५९

गो-सेवा के लिए हमें अपने मन को विशाल बनाना होगा

मैं जितना-जितना सोचता हूँ, उतना मुझे यही प्रतीत होता है कि गाय के बारे में जितना हमारा "प्लानिंग" है, वह ऊपर-ऊपर का ही है। गाय का जो मसला है, वह काफी गहरा है। जहाँ तक हिन्दुस्तान का ताल्लुक है, उसकी जड़ें आध्यात्मिक क्षेत्र में हैं।

हमारा रवैया

इस देश ने कभी एक्सपेन्शनिस्ट की वृत्ति नहीं रखी थी। उलटे दुनिया के लोगों को यहाँ आने दिया। इस वास्ते हमारा दिमाग वैसा ही आज तक काम करता है। जाति-भेद का भी विकास यहाँ हुआ, जिसके कारण आज मसले पैदा होते हैं। लेकिन वह एक पद्धति है सर्व-रक्षण की। एक भाई ने अभी कहा कि जमीन की शक्ति कायम रखने की बात किसान का लड़का भी स्वाभाविकता से जानता है। ऊपर से कृत्रिम खाद देकर जमीन की शक्ति बढ़ाने के तरीकों में दूसरे देशों ने प्रगति की है। पर हिन्दुस्तान में सहज भाव से जमीन की रक्षा का ज्ञान किसान को मिल चुका है। गीता ने हमको सिखाया है—"परस्परं भावयन्तः" सृष्टि का रक्षण हमको करना चाहिए, ऐसी भावना उसमें है। यह बड़ी गहरी चीज है।

हमारे यहाँकी संस्कृति का जैसे बाहर के देशों पर आक्रमण हुआ, वैसे हमारे में जो अज्ञान था, वह भी प्रकट हुआ। हममें से कोई चीन गये हों या अमेरिका गये हों, उनको लगता है इस चीज का तो हमें पता ही नहीं। मिस्टर एंड्रयूज ने कहा था, यहाँ गिलहरी

जैसी मनुष्य के नजदीक आती है, वैसी यूरोप, अमेरिका में नहीं आती। वहाँ मनुष्य से वह दूर-दूर भागती है। इसका मतलब यह है कि यहाँके मनुष्य के जीवन के रवैये में उस तरह की खास दृष्टि आयी है। वह चाहता है कि उन प्राणियों को भी साथ रखें। इतना ही नहीं, साँप जैसे प्राणी को भी हम नजदीक रखते हैं। उसकी पूजा भी करते हैं। लेकिन यह दृष्टि दुनिया के दूसरे देशों में नहीं दीखती। मैंने एक निबन्ध पढ़ा था अंग्रेजी में। उसमें कहा था कि हम एक साँप को मारते हैं तो हम कीड़े बढ़ाते हैं और १ पौण्ड खोते हैं। इस तरह से वे लोग सोचते हैं। लेकिन हिन्दुस्तान में रवैया है कि उनका रक्षण होना चाहिए। यह मानी हुई बात है कि हम सृष्टि के साथ ज्यादा छेड़-छाड़ करते हैं तो उससे मसले पैदा होते हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि सृष्टि का उपयोग करने में ही हम हिचक रखें। पर उसकी मर्यादा बाँधनी होगी। सृष्टि से हमको थोड़ा मिलता रहे तो कोई बात नहीं। उससे कुछ तकलीफ भी उठानी पड़ेगी, लेकिन ज्यादा छेड़ना नहीं चाहिए।

मनुष्य से डरेंगे तो गाय को कौन बचायेगा ?

आपने चरागाह की बात की तो मुझे एकदम शांति-कुटीर (वर्धा) की याद आयी। इतनी जमीन वहाँ पड़ी है कि ध्यान खिंचता है उस तरफ। हर साल गायें वहाँ चरती हैं, उनका मूत्र, गोबर वहाँ पड़ता है। अच्छा खाद बनता है। मैंने कहा, उसको जोता क्यों न जाय? मुझे कहा गया कि मनुष्य को जमीन का बड़ा लोभ होता है। इसलिए एक बार उसको जोतना शुरू करेगा तो फिर छोड़ना मुश्किल होगा। अगर मनुष्य से हम डरेंगे तो गाय को बचायेगा कौन ?

गायों से काम न लेने का सेण्टीमेण्ट अपने यहाँ है जरूर। लेकिन मैं कहता हूँ, वह मूढ़ विचार है, कुछ हद तक उसका लाभ भी है। १९२६ की बात है। अभी दिल्ली में जैसा खेती का प्रदर्शन हुआ है, वैसा एक छठें प्रमाण में पूना में हुआ था। मैं वहाँ देखने के लिए गया था। मगनलाल भाई मेरे साथ थे। वहाँ बड़ी-बड़ी गायें बतायी गयीं थी। ५० पौण्ड दूध देनेवाली, ६० पौण्ड, ८० पौण्ड दूध देनेवाली। मैं सोचने लगा कि सुबह गाय का जो वजन हो, उसके दो ही घंटे के बाद यदि ८० पौण्ड वजन घट जाय तो उस गाय की क्या हालत होती होगी ? मगनलाल भाई से मैंने कहा, यह देखकर मुझे प्रसन्नता नहीं होती। वे बोले, आपकी भावना ठीक है। ऐसी गाय को जरा कोई बीमारी आ जाय तो वह 'रेझिस्ट' नहीं कर सकेगी। जंगल की गाय 'रेझिस्ट' कर सकती है।

महामना स्यात् तत् व्रतम्

अपने यहाँ सुबह अधिक दूध चाहिए। पर वैद्य-शास्त्र में कहा है: व्यायामानिलसेवनम्। व्यायाम और अनिल-सेवन के बाद जो दूध बनता है, याने जो शाम का दूध होता है, वही अच्छा दूध है। लेकिन इस तरह हम सोचते ही नहीं। दूध कैसा मिलेगा, इसीमें ध्यान रहता है। फिर मनुष्य की सहूलियत के लिए उस पशु को बाँधकर रखने का भी विचार करने लगते हैं। होना तो यह चाहिए कि हमको ज्यादा लाभ भले ही न हो, पर हम थोड़ा-सा दोहन करते हैं। पूरा चिन्तन नहीं करते। लेकिन मनुष्य की यह हालत है कि वह हर बात में हिसाब करता है। प्राणियों से भी चाहे जिस तरह लाभ उठाना चाहता है। वर्धा में हमने चर्मालय चलाया था। वहाँ ज्यादातर ब्राह्मण ही उस काम में लगाये थे। वे नये धर्मांतरित थे। इसलिए ऐसे जिज्ञासु बने थे कि चूहा, साँप आदि सब तरह के प्राणी लाते थे और उनका चमड़ा निकालते थे। कहते थे यह नेशनल वेल्थ है। मैं अभी कश्मीर में गया था। वहाँ मुझे "इम्पोरियम" में ले गये। वहाँ भिन्न-भिन्न पशु के बालों के कपड़े रखे हुए थे। चूहे के बालों के भी कपड़े रखे थे। उसके दाम भी बहुत थे। एक बिल्डिंग बनाने में जितना लगता है, उतना एक-एक कपड़े का दाम था। कितने चूहों के बाल इकट्ठा किये होंगे, बाद में उसका कपड़ा बनाया होगा, उसको पहनना और उसमें गौरव मानना। वह देखकर मैंने कहा, मनुष्यजन्म पाकर चूहा बनने के लिए मैं तैयार नहीं हूँ। हो सकता है पिछले किसी जन्म में मैं चूहा बना हूँगा, पर अब आगे चूहा बनना मैं नहीं चाहता। चीनी लोग तो इससे भी आगे बढ़े हैं। उन्होंने ऐसा एक भी प्राणी रखा नहीं, जिसको उन्होंने खाये बिना छोड़ा है। लियांयुतांग ने यहाँ तक कहा है, अगर मेरा ऑपरेशन होना है, उसके लिए यूरोपियन डॉक्टर है और दूसरा चीनी है तो मैं यूरोपियन डॉक्टर को पसंद करूगा। क्योंकि चीनी डॉक्टर रहेगा और उसको मेरे पेट का कोई अवयव अच्छा मालूम होगा तो वह उसको खा लेगा। यह एक विनोद था। यह सारी चीजें हम हिन्दुस्तान में नहीं कर सकते। यह हमारी उस बारे में 'डिस एबिलिटी' है। एक भाई ने प्राणियों का मांस क्यों खाना चाहिए, यह समझाते हुए अपने यहाँकी मुक्ति-थिअरी का उपयोग करके समझाने की कोशिश की। उसने कहा, प्राणी को खाते हैं तो उसका रूपान्तर 'ह्यूमन प्रोटीन' में होता है। और मानव देह तो मुक्ति के लिए सर्वश्रेष्ठ माना गया है। इस वास्ते हम अगर प्राणियों को खाने से इन्कार कर देते हैं तो वे प्राणी मुक्ति पायेंगे ही नहीं। इस तरह अर्थशास्त्र में हम बहते चले जायँगे और क्षुद्रमना बनेंगे तो यह चलेगा नहीं। क्षुद्रमना बनेंगे तो जीवन का आनन्द हम खोयेंगे। इसी वास्ते उपनिषद् में कहा है—"महामना स्यात् तद्व्रतम्" मन बड़ा बनाने का व्रत लो। हमारा मन हमको विशाल बनाना होगा। नहीं तो प्राणियों का चाहे जैसा उपयोग करते चले जायँगे तो हम जीवन का सार-तत्त्व खोयेंगे।

भारतीय जीवन में गाय का स्थान

हिन्दुस्तान में हमने हिन्दुस्तान का समाजवाद बनाया है। उसमें मनुष्य का जो स्थान है, वही गाय का है। दुनिया के समाजवाद ने हरएक मनुष्य को समान रक्षण दिया है। फिर किसीकी योग्यता कम हो या ज्यादा हो, सबको समान रक्षण है। इस तरह दूसरे वाद नहीं मानते। समाजवाद ही मानता है। लेकिन समान रक्षण का अधिकार हिन्दुस्तान के समाजवाद ने मनुष्यों के साथ गायों को भी दिया है। इस प्रकार से मानव वंश ने गोवंश को भी माना है। अपने कुटुम्ब में गाय को स्थान दिया है।

आहार के साथ मानवशास्त्र का सम्बन्ध

इन दिनों कृत्रिम नस्ल-सुधार की बात चलती है। आज वह क्रिया पशुओं के लिए है। पर वह पशु तक ही सीमित क्यों रहेगी ? मानव तक क्यों नहीं आ सकेगी ? मैं स्थूल भाषा बोलता हूँ। जिस जनन-क्रिया के साथ भगवान ने प्रेरणा रखी है, उसका अगर इस तरह विकृत स्वरूप आता है तो उससे वृत्ति क्षुद्र बनती है। याने आंतरिक दृष्टि से हम एक बड़ी बात खोयेंगे। बाह्य परिणाम के अलावा आंतरिक परिणाम भी पशुओं पर होता है। क्योंकि पशुओं का भी एक जीवन है। उनको जीवन का आनन्द

भी है। यहाँ तक कि हमारे यहाँ आत्मा का स्वरूप ही आनन्द माना है। जीवन में आनन्द नहीं रहेगा तो कोई भी जीयेगा नहीं। इसलिए पशु को अगर हम जिलाना चाहते हैं तो उसको जीवन का पूरा आनन्द चाहिए। पशु के मन पर हमारा परिणाम होता है कि नहीं, यह हमें देखना नहीं है, लेकिन पशुता का मानव पर ग्राफ्ट होता है, यह बात निश्चित है। क्योंकि जिस भावना से उसमें दूध पैदा किया जाता है, उसी दूध का उपयोग हम करते हैं। फिर उस प्राणी की वासना, मनःस्थिति का परिणाम हमपर होता है। मैं मानता हूँ कि मानव-बुद्धि अच्छी तरह से पनपेगी, अगर मानव दूध नहीं लेगा। जो क्रिया आप करना चाहते हैं, वह कुदरत में "इंसीडेण्टल" (प्रसंगवश) नहीं है। यह ठीक है कि वह भाव मनुष्य में नहीं है। आप उसको रोक भी सकते हैं। लेकिन चाहे वह कृत्रिम क्रिया मनुष्य में न आयी हो और आपने उसकी मर्यादा मान ली हो, फिर भी कृत्रिम ढंग से पैदा हुआ दूध मनुष्य पर जरूर परिणाम करेगा। यह जो आहार के साथ मानस-शास्त्र जुड़ा हुआ है, इसका अध्ययन पाश्चात्यों ने किया नहीं है। उनके डायटिक्स में यह नहीं आता। अपने यहाँ योगशास्त्र में कहा है—"आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः" —आहार शुद्ध रहा तो चित्त शुद्ध रहता है। यह वैज्ञानिक सत्य है। अब इसपर दलीलें करते हैं। जिनका आहार सात्त्विक है, ऐसे लोग भी रजोगुणी होते ही हैं। जिनका आहार सात्त्विक नहीं होता, ऐसे कई लोग सत्त्वगुणी भी होते हैं। ऐसे कोई होते ही नहीं, ऐसा तो नहीं है। कई लोग होते हैं। फिर भी इसका यह मतलब नहीं है कि आहार का मनुष्य के चित्त के साथ कोई संबंध नहीं। मनुष्य के आहार का परिणाम उसके चित्त पर जरूर होता है। अगर आहार पर हम मर्यादा नहीं रखेंगे तो उसका मनुष्य पर अच्छा असर नहीं होगा। मर्यादा हमेशा थोड़ी तकलीफ देती है। नहीं तो उसे मर्यादा ही क्यों कहेंगे? हमको समझना चाहिए कि मर्यादा तकलीफ देनेवाली नहीं है, वह उन्नति और रक्षा के लिए जरूरी है। ● ● ●

प्रार्थना-प्रवचन

सिरसा (पंजाब) १७-१२-'५९

युद्ध्यस्व विगतज्वरः

कल मैं समझा रहा था कि हिंसक युद्ध के परिणाम पिछले दो महायुद्धों में हम देख सके हैं। इसलिए अब शान्ति की चाह पैदा हुई है। चाह हुई है, पर राह खुली नहीं। राह की तलाश हो रही है। इच्छा खूब है कि शांति दुनिया में रहे, लेकिन किस तरह रहे, इसका दर्शन नहीं हुआ है। हिंसा की शक्ति को विकसित करने के लिए मानव-समाज ने हजारों साल बिताये हैं। उसमें वैज्ञानिकों ने और वीर पुरुषों ने अपनी-अपनी ताकत लगायी है। अब अगर शांति की राह ढूँढ़ना चाहते हैं तो शांति की शक्ति बढ़ाने का संशोधन करना होगा। उसके लिए त्यागी और वीर पुरुषों को पराक्रम करना होगा। वैज्ञानिकों की भी मदद लेनी होगी और चिन्तन करनेवालों को चिन्तन करना होगा। यह नहीं कि हिंसा की शक्ति विकसित करने के लिए हजारों साल लगे तो अहिंसा की शक्ति विकसित करने में भी हजारों साल लग जायँगे। आज जमाने की रफ्तार तेज हो गयी है। पहले जो चीज हजारों साल में होती थी, वह अब पच्चीस साल में हो सकती है। पुराने जमाने में जो प्रयोग हुए, वे दुनिया के किस गोशे में हुए, उसका पता दुनिया के दूसरे हिस्सों को नहीं लगता था। गौतम बुद्ध भारत में घूमते रहे, लेकिन हिन्दुस्तान के बाहर की दुनिया को यह पता नहीं था कि ऐसा एक महापुरुष दुनिया को दिव्य विचार देता हुआ भारत में घूम रहा है। दुनिया को पता नहीं था, इतना ही नहीं, पर हिन्दुस्तान के भी दूर के हिस्सों को पता नहीं था कि गौतम बुद्ध का 'मिशन' एक हिस्से में चल रहा है। यही हालत ईसामसीह की थी। इन दिनों अगर उस कोटि के किसी महात्मा का काम दुनिया के किसी भी हिस्से में चलेगा तो कुल दुनिया का ध्यान उसकी तरफ लग जायगा। याने जितना समय पहले लगता था, उतना समय अब नहीं लगता। इसलिए अहिंसक शक्ति विकसित करने के लिए हजारों साल बिताने पड़ेंगे, यह खयाल गलत है। अहिंसा की जड़ें कहाँ हैं, इसका ठीक से पता चले तो आज भी खोज हो सकती है।

अणुशस्त्रों का विरोध करनेवाले क्या चाहते हैं?

अणुशक्ति का उपयोग न किया जाय, अभी इतनी ही माँग की जा रही है। माँग करनेवालों में बहुत-से हिंसावादी और हिंसा चाहनेवाले हैं। अहिंसा को माननेवाले बहुत थोड़े हैं। अणुशस्त्रों के पहले छोटे-छोटे शस्त्रास्त्रों के लिए दुनिया में सहूलियत थी। वह अब नहीं रही। इसलिए जो महाशय अणुशस्त्र के खिलाफ बोलते हैं, वे ही कोड़े की सजा या फाँसी की सजा के अनुकूल बोलते हैं। ये जो छोटे-छोटे मध्यशस्त्र हैं, उनकी मदद वे चाहते हैं। ताकि चन्द लोग बहुत लोगों को अच्छी तरह दबा सकें। दूसरों को दबाने का यह जो शस्त्र था, वह अब टूट रहा है। इसलिए वे चाहते हैं कि अणुशस्त्र के प्रयोग बन्द हों। मेरे मन की हालत इससे बिलकुल उलटी है। मैं हमेशा कहता आया हूँ कि ये अणुशस्त्र हिंसा के परमोत्कर्ष के द्योतक और अहिंसा के नजदीक हैं। जैसे कि एक "वर्तुल" (वृत्त) के घेरे (परिधि) के दो सिरे होते हैं, उसी तरह एक ओर आणविक हिंसा और दूसरी तरफ अहिंसा है। देखने में तो दोनों दूर लगते हैं, पर वे एक-दूसरे के बहुत नजदीक होते हैं। मैं मानता हूँ कि अणुशस्त्रों के निषेध की माँग में उन लोगों की मानवीय दया-बुद्धि 'ह्यूमेनिटेरियन' दृष्टि भी है। लेकिन मैं पूछना चाहता हूँ कि उनकी जो माँग है, क्या उसमें ह्यूमेनिटेरियन दृष्टि के अलावा और कुछ भी है? आज के जमाने में लोगों को दबाने के जो शस्त्र हैं, क्या उन्हें वे छोड़ना चाहते हैं? क्या अहिंसा की शक्ति बढ़े, ऐसा वे चाहते हैं? अहिंसा के आधार पर समाज-रचना हो, इसको वे पसंद करते हैं? एक तरफ वे लोग करुणा महसूस करते हैं और उधर दंडशक्ति भी चाहते हैं। मैं उनके साथ अन्याय नहीं करता। उनमें करुणा जरूर है, पर वह रानी नहीं है, दासी है। करुणा के ही कारण सेनाओं में डॉक्टरों की, रेडक्रॉसवालों की सेवाओं की जरूरत होती है। वे सारे करुणा से भरे रहते हैं। लेकिन उस करुणा में लड़ाई खत्म करने की ताकत नहीं होती। लड़ाई में रानी है हिंसा। हिंसा रानी के राज में करुणा दासी को सेवा के लिए रखते हैं। उतनी मात्रा में उनमें करुणा है। लेकिन वे दंडशक्ति से लोगों को दबाना भी चाहते हैं। इस तरह कुछ करुणावादी और कुछ अधिक संख्या में दंडवादी दोनों मिलकर अणुशस्त्रों के खिलाफ माँग कर रहे हैं।

मैं कहता हूँ, जितनी हिंसा, क्रूरता तलवार चलानेवाला करता है, उतनी अणु-बम डालनेवाला नहीं करता। वह नुकसान ज्यादा करता है, पर क्रूरता उसमें नहीं होती। किसीको अगर खंजर मारना हो तो आँखें फाड़नी होंगी, आवेश लाना होगा, दिल कठोर करना होगा। अगर उस वक्त उसकी फोटो निकाली जाय तो वह जानवर की फोटो मालूम होगी। उसी तरह ऊपर से बम डालनेवाले की फोटो ली जाय तो उसमें एक मामूली इन्सान की शकल दिखायी देगी। वह भयानक शस्त्र अपने हाथ से डालता है, पर उसके मन में क्षोभ नहीं होता। अब क्षोभ "आउट आफ डेट" हुआ है। क्षोभ अब पुरानी चीज हो गयी है। अहिंसा में तो क्षोभ है ही नहीं, पर हिंसा में भी उसका स्थान नहीं रहा है। चीन की ओर से हमारी सरहद पर जहाँ कुछ हुआ और एकदम लोग प्रक्षुब्ध हुए। अगर मन ऐसा ही प्रक्षुब्ध होने लगा तो इस जमाने के लायक हम नहीं हैं, ऐसा ही मानना चाहिए। इस जमाने में गणित चाहिए। क्षोभ काम का नहीं। अगर हमें बम डालना है तो उसे किस दिशा में डालना है, कौन-से कोण से डालना है और किस जगह डालना है, इसका हिसाब करना पड़ता है। हिसाब तो बिलकुल सही हो, लेकिन मन में क्षोभ बिलकुल नहीं होना चाहिए। अगर क्षोभ रहा तो निशाना गलत होगा। इसलिए इसके आगे हिंसा के लिए भी क्षोभ अनुकूल नहीं पड़ेगा। जेल में फाँसी के तख्ते पर जब किसीको लटकाते हैं तो लटकानेवाला जो राक्षस होता है, वह अपने को गुनाहगार नहीं मानता। वह समझता है कि मैं अपना कर्तव्य कर रहा हूँ। वहाँ जो डॉक्टर हाजिर रहता है, वह मानता है कि मैं "ऑन ड्यूटी" काम पर तैनात हूँ। जेलर का भी "कॉन्शस क्लीयर" (दिल साफ) रहता है। वह कहता है, मेरा इसमें दोष नहीं है। यह सब कानून के मुताबिक हो रहा है। सजा देनेवाला न्यायाधीश भी सजा लिख देता है और घर में जाकर अपने बाल-बच्चों के साथ प्रेम से खाता-पीता है। यह एक नया जमाना आ रहा है। इसमें अन्दर से 'कान्शन्स' (इन्सान की आत्मा) बिलकुल साफ रहती है। इसलिए हमको समझना चाहिए कि दंडनीति-वाले जितने क्रूर होते हैं, उतने अणुशस्त्रवाले नहीं होते। इन मुत्सद्दियों का जो चिन्तन चलता है, वह भी अखिल विश्व का चलता है। अगर पुरानी ही हालत होती तो आज किसीकी सरहद पर हमला होने पर दुनिया पर उसका असर न होता। चीन के नजदीक पुर्तगाल का एक छोटा-सा द्वीप है, लेकिन चीन उसपर हमला नहीं कर सकता। पुराना जमाना होता तो कर लेता। आज अगर करता है तो वह अखिल विश्व का सवाल बनता है। इसलिए आज चिन्तन करनेवाले लोग गलत चिन्तन कर सकते हैं, उसके परिणामस्वरूप हिंसा भी हो सकती है और हानि भी हो सकती है। लेकिन उनका चिन्तन क्रूर नहीं हो सकता। इसलिए मैं कहता हूँ कि अणुशस्त्रों के खिलाफ जिहाद बोलनेवाले लोग अहिंसा चाहते हैं, ऐसा नहीं।

अमन की राह

मैं जितना विचार करता हूँ, उतना मेरा विचार दृढ़ बनता जा रहा है कि अणुशस्त्रों से डरने का कोई कारण नहीं। यह तो बिना व्यापक चिन्तन का परिणाम है। अब तो चाँद पर जाने की कोशिश चल रही है। इस तरह व्यापक बनने के प्रयत्न के फल-स्वरूप ये शस्त्र निकले हैं, लेकिन आज जो व्यापक बनने की कोशिश चल रही है, उसमें से अमन की राह तभी निकलेगी, जब हम 'जय जगत' समझेंगे। इसके आगे "जय-हिन्द" भी संकुचित होगा। जय-हिन्द से छोटा नारा तो कत्तई नहीं चलेगा। लेकिन "जय-हिन्द" का नारा भी छोटा साबित होगा। इसलिए मैं समझ रहा हूँ कि आगे हमारा संबंध चीन से सतत आनेवाला है। पहले चीन से हिन्दुस्तान का संबंध नहीं था। दोनों के बीच हिमालय खड़ा था। दोनों की "बॉर्डर" सुरक्षित मानी जाती थी। लेकिन वह संरक्षण संकुचित था। इसलिए वह रक्षण टिकनेवाला नहीं है। चीन-हिन्दुस्तान का संबंध अति निकट का होनेवाला है। चीन हमारा पड़ोसी बन गया है। इसलिए अगर हम तीव्रता, क्षोभ से कुछ कर लेते हैं तो वह चीज काम की नही होगी। उससे मसला हल नहीं होगा। यह संबंध तात्कालिक नहीं है, कायम का है। इसलिए चीन और हम एक ही दुनिया के हैं, यह ध्यान में रखना होगा। यह सिर्फ चीन और हिन्दुस्तान के लिए मैं नहीं बोल रहा हूँ। सिर्फ मिसाल के लिए मैंने उनका नाम लिया। यह बात मैं सब देशों के लिए बोल रहा हूँ।

एस. आर. सी. ने जब नयी राज्य-रचना की तो उसके बारे में काफी कशमकश चली। बेल्लारी इधर हो या उधर, बेलगाँव का क्या किया जाय? इस तरह का वाद-विवाद चला। उससे खराब मन भी प्रकट हुआ। फिर भी हम समझे थे कि हम एक ही हिन्दुस्तान के नागरिक हैं। हमारा देश एक ही है। इसलिए झगड़े भी मर्यादित हुए। मैं समझता हूँ, उसी तरह चीन और हिन्दुस्तान का सवाल है। क्योंकि आज जो राष्ट्र माने गये हैं, वे इसके आगे प्रान्त माने जायँगे और सब दुनिया प्रान्तों का एक समूह, एक इकाई मानी जायगी। उधर सारी दुनिया की एक बड़ी इकाई और इधर ग्राम की छोटी इकाई।

मैं हिमाचल प्रदेश में गया था, तब मैंने देखा, वहाँके लोगों में काफी उत्साह था। उसका कारण बताते हुए मैंने कहा था, हिमालय की भव्यता यहाँके लोगों के जीवन में प्रकट हो रही है। मैंने जो कारण बताया, उसमें वहाँके 'सियासतदाँ' जिनको मैं 'नादाँ' कहता हूँ, क्योंकि पुराने जमाने के वे 'दाने' थे, लेकिन अब 'नादान' बने हैं, वे दुःखी हुए। कहने लगे कि हमारे यहाँ अपनी असेम्बली नहीं है, हिमालय प्रदेश 'सेण्टरली एडमिनिस्टर्ड' (दिल्ली की सरकार की मातहत) है याने झगड़ने की अपनी जगह नहीं। मैंने कहा तुम्हारे लिए खुशी की बात है कि बीच की एक कड़ी टूट गयी। आगे तो यह होनेवाला है। इधर मजबूत अपने पाँव पर खड़ा हुआ ग्राम-स्वराज्य और उधर मजबूत विश्व। याने ग्राम में पूरी भौतिक और सामाजिक शक्ति रहेगी और विश्व में पूरी नैतिक शक्ति रहेगी। ये प्रान्त, देश, कामन वेल्थ आदि बीच की कड़ियाँ नहीं रहेंगी। फिर गाँववाले अपनी योजना बनायेंगे। उसमें किसीका दखल नहीं होगा। आज क्या होता है? योजना ऊपर से बनकर नीचे आती है। यह चीज ऊपर से नीचे आते-आते खराब होकर आती है और नीचे की चीज ऊपर पहुँचाते-पहुँचाते पहुँचती ही नहीं। इसलिए मैंने उनको समझाया, तुम प्रगति पर हो। तुम्हारी सियासत तरक्की पर है। आगे आनेवाली दुनिया के तुम नजदीक हो। इसीलिए तुम्हारे यहाँ पंजाब के जैसे सियासी झगड़े-पचड़े नहीं हैं। इतना समझाया, तब वे समझ गये और कहने लगे कि यह सही है कि पंजाब के झगड़े यहाँ नहीं हैं। इस बात से उन्होंने धन्यता महसूस की

झगड़े मिटाने की तरकीब

मैं समझा रहा था कि आगे बीच की कड़ियाँ कटनेवाली हैं। आज के राष्ट्र कल सूबे होनेवाले हैं। चीन, जापान, फ्रांस, जर्मनी, इंगलैण्ड, हिन्दुस्तान, आगे की रचना में देश रहनेवाले नहीं हैं।

इसलिए जिस तरह हमने अपने अंदर-अंदर के झगड़े हल किये, उसी तरह देश-देश के बीच जो झगड़े हैं, उनको हल करना होगा। "आबू" की गिनती कहाँ करें ? राजस्थान में करें या गुजरात में ? इसको लेकर भी मनमुटाव कितना हुआ ? आबू हवा खाने की जगह है। दोनों भी जाओ वहाँ हवा खाने के लिए। लेकिन नहीं। दोनों चाहते हैं कि "आबू" हमारे सूबे में रहे। आबू तो वहीं रहा, जहाँ भगवान ने उसे रखा है। इनका झगड़ा यह था कि नक्शे में वह कहाँ हो ? उसके लिए सबूत में देते हैं वह गया-बीता "भूत" याने इतिहास। अब इस जमाने में आप क्या पुराने जमाने के हवाले देंगे ? पुरानी नदियाँ भी आज अपनी जगह से हट गयी हैं, ऐसा माना जाता है। पुराने जमाने में हिन्दुस्तान की सरहद "कंदाहार" तक याने अफ़गानिस्तान तक थी। गांधारी कंदाहार की ही थी, ऐसा कहा जाता है। आज की भाषा में कहूँ तो गांधारी पठान थी। उपनिषद् में गुरु शिष्य को कैसे ज्ञान देता है, इसकी मिसाल दी है। गुरु बचपन से स्मशान तक सिखाता नहीं। वह तो दिशा-दर्शन कर देता है। इसको मिसाल देते हुए उपनिषद् ने एक कहानी बतायी है। एक था मनुष्य। वह कहीं मुसाफिरी के लिए निकला। बीच में चोरों ने उसको पकड़ा। उसकी आँख में पट्टी बाँध दी और उसके हाथ बाँधकर जंगल में उसे छोड़ दिया। उसके पास जो धन था, वह लूट लिया। वह मनुष्य चिल्लाता रहा—"मेरी पट्टियाँ खोलो ! मेरे बन्धन काटो ! मुझे दीखता नहीं।" एक भाई उधर से जा रहा था, उसने सुना तो वह नजदीक आया और उसने उसकी आँख की पट्टी खोल दी। उसने कहा, मुझे गांधार देश जाना है। वह कहता है—"एताः दिशो गांधाराः एताः दिशो व्रजेति"—इस दिशा में गांधार है, इस दिशा में जाओ। फिर वह पूछते-पूछते जाता है। यह उपनिषद् कंदाहार में लिखा गया। क्या मैं अब दावा करूँ कि वह अफ़गानिस्तान का हिस्सा हिन्दुस्तान में जोड़ो ? वैसे ही कौन शहर कहाँ हो, यह क्या सोचते हो ? ये झगड़े जब चलते थे, तब मैं विनोद में कहा करता था, तुम अपने हाथ में ही रखना चाहते हो न ? क्या-क्या रखोगे ? हाथ में रखना ही है तो मैं तुम्हें "यूक्लिड" सिखाता हूँ। एक सवाल सीखो। ए० बी० सी० का त्रिकोण अपने हाथ में रखो। उसमें सब आ जायगा। ए याने अफ़गानिस्तान, बी० याने बर्मा, और सी० याने सीलोन, तीनों को अपना मानो। तीनों के राज्य भले ही अलग-अलग हों, तुम वहाँके लोगों को अपना मानो।

कश्मीर किसका है ?

अभी मैं जम्मू-कश्मीर में गया था। वहाँ जम्मू ऐण्ड कश्मीर स्टेट है। मैंने कहा, सिर्फ कश्मीर क्यों नहीं कहते ? तो कुछ लोगों ने बताया, जम्मू का एक स्वतन्त्र स्थान है। जम्मूवालों को दुःख होता है कि दुनिया में कश्मीर का ही नाम होता है। वहाँ झेलम घाटी है तो यहाँ चिनाव घाटी भी है। यहाँ भी सृष्टि-सौन्दर्य बहुत है। लेकिन जान-बूझकर इसकी उपेक्षा करते हैं। जम्मू के लोग नाराज हैं, इसलिए कुछ संतुलन करना जरूरी हुआ तो थोड़े में उन्होंने उनका समाधान कर दिया। उससे स्टेट को अब जम्मू ऐण्ड कश्मीर कहते हैं। मैं तो उसको जम्मू ऐण्ड कशमकश स्टेट ही कहता था। लेकिन एक मीटिंग में मैंने कहा, आप जे० के० स्टेट कहते हैं तो क्या इतने ही अक्षर हैं ? अंग्रेजी में जे० और के० के बाद कुछ अक्षर हैं कि नहीं ? आप अगर उस अक्षर को छोड़ देंगे तो वह हिस्सा छूट ही जायगा। जम्मू-कश्मीर एण्ड लद्दाख स्टेट, जे० के० एण्ड एल० स्टेट कहना चाहिए। यह बात मैंने कही और उसके दो महीने बाद बॉर्डर की खबर आयी। लद्दाखवाले नमक खायेंगे तिब्बत का और आपके लिए बनेंगे नमकहलाल। यह मैं "लाउड थिंकिंग" (प्रकट चिन्तन) कर रहा हूँ। मतलब लद्दाख और तिब्बत हमारा ही है। उसी दुनिया का एक हिस्सा है, जिसमें हम रहते हैं। विश्व राष्ट्र का एक सूबा है। कश्मीरी कह रहे थे कि कश्मीर में रायशुमारी होनी चाहिए। मैंने कहा, किससे पूछा जाय ? क्या पाँव से पूछा जाय तू कहाँ जाता है ? क्या हाथ से पूछा जाय ? कश्मीर तो एक अंग है और दुनिया पुरुष है। इसलिए कश्मीर के बारे में आज दुनिया की राय लेनी होगी। एक जमाने में भारत अपने बाप का था, चीन अपने बाप का था। लेकिन आज कश्मीर दुनिया का है, चीन दुनिया का है, भारत दुनिया का है। यह चीज हमको जाननी और पहचाननी होगी। अगर नहीं जानते और पहचानते हैं तो मार खायेंगे। विज्ञान तेजी से बढ़ रहा है। हमको अपना दिमाग साफ रखना होगा। नहीं तो मसले कभी हल होनेवाले नहीं हैं। बल्कि मसले बढ़ते ही जायँगे। फिर मानव-समाज में कशमकश बढ़ती ही जायगी। अगर ऐसा ही चलता रहा तो मैं कहता हूँ, होने दो एक बार दुनिया का खात्मा। यों भी इस तरह खात्मा ही होनेवाला है। मैं अहिंसा को मानता हूँ। पर अहिंसा से ज्यादा वेदांत मानता हूँ। इसलिए कहता हूँ कि खात्मा होना है तो होने दो।

यो वै भूमा तत् सुखं नाल्पे सुखमस्ति

क्या अफ़गानिस्तान, क्या चीन, क्या पाकिस्तान, क्या महाराष्ट्र और गुजरात, इनमें जो कशमकश चलती है, वह दिल और दिमाग की है। आज दिमाग बड़ा बना है, लेकिन दिल छोटा-सा ही रहा है। इसके कारण मनुष्य के विकास में विसंगति आयी है। शारीरिक विकास मनुष्य का अगर समान नहीं हुआ तो शरीर टिकेगा नहीं। आज दिमाग और दिल में सुकून नहीं है, इसलिए जितना संतोष जंगल के शेर को है, उतना संतोष शेरे-कश्मीर को नहीं है। याने किसी शेरे-इन्सान को नहीं है। क्योंकि जंगल के शेर का दिल जैसा छोटा होता है, वैसा ही उसका दिमाग भी छोटा होता है। उसको अपनी शिकार मिल गयी तो वह खुश होता है। चीन के जंगल के शेर की हालत क्या है, यह यहाँका शेर नहीं सोचता और यहाँके शेर की हालत क्या है, यह चीन का शेर नहीं सोचता। दोनों का दिल और दिमाग समान और छोटा है। इसलिए दोनों को संतोष है। ऐसी अगर हमारी हालत होती तो हमको भी संतोष रहता। कुछ-कुछ ऐसी हालत पहले हमारी थी। हर गाँव स्वयंपूर्ण था। दूसरे गाँव के साथ संबंध ही नहीं आता था। चीनी यात्री लाओत्से ने उस वक्त के आदर्श ग्राम का वर्णन करते हुए लिखा है कि रात को कुत्तों के भोंकने की आवाज सुनकर एक गाँव के लोग मानते थे कि कहीं नजदीक दूसरा गाँव होगा। याने वहाँ जाकर देखने की जरूरत उनको मालूम नहीं होती थी। लेकिन इन दिनों चाँद पर मनुष्य है कि नहीं, मंगल पर मनुष्य है कि नहीं, इसकी खोज हो रही है। हमारे पुराने लोगों ने मंगल को "भौम" नाम दिया है—"भौमा नाम मंगल" याने मंगल पर भूमि होनी चाहिए, ऐसा अंदाज हमारे प्राचीनों ने किया था। लेकिन उस जमाने में उसके नजदीक जा नहीं सकते थे। मंगल पर अगर मनुष्य बसते हैं तो रहें आनन्द से, ऐसा मानते थे। इस तरह वे अल्प संतुष्ट थे। लेकिन जब उपनिषद् का ऋषि सामने आया, तब उसने यह अल्प संतोष तोड़ा। उसने कहा—'यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति'।

आज कहीं कुछ घटना होती है तो कुल दुनिया को उसका पता चलता है। दिमाग इतना बड़ा बन गया है। उस हिसाब

से हमने अपना दिल कितना बड़ा बनाया ? अगर दिल बड़ा नहीं बना तो उसके लिए जिम्मेवार कौन है ? क्या चीन जिम्मेवार है ? भारत है ? पाकिस्तान है ? इसके लिए मनुष्य का असमान विकास ही जिम्मेवार है। हमको अपना दिल बड़ा बनाना पड़ेगा। इसी वास्ते "जय जगत्" पुकारना होगा। खुशी की बात है कि हिन्दुस्तान में "जय जगत्" समझाने की कोशिश नहीं करनी पड़ी। यहाँके लोगों ने इस मंत्र को सहज उठा लिया है। क्योंकि यहाँकी ऐसी मनोवृत्ति है कि व्यापक कल्पना सहज ग्रहण होती है। "जय-हिन्द" समझाना पड़ेगा, तभी समझेंगे और "जय पंजाब" समझाना तो "जय-हिन्द" से भी मुश्किल होगा। इस तरह हिन्दुस्तान दुनिया को राह दिखा रहा है कि दिल व्यापक बन सकता है।

गाँव आत्म-निर्भर हो

इसीलिए मैं कहता हूँ कि एक तरफ गाँव और दूसरी तरफ विश्व। हरएक गाँव अपने पाँव पर खड़ा होगा। गाँव की योजना दिल्ली नहीं करेगी। देहात की योजना देहात बनायेगा। यह बात मैंने पंढरपुर में कही थी। उस वक्त उसकी कुछ टीका भी हुई थी। एक बार पंडित नेहरू से प्रेस कॉन्फरेन्स में पूछा गया कि—बाबा ने देहात की योजना दिल्ली नहीं करेगी, ऐसा कहा है। इसपर आपकी राय क्या है ? पं० नेहरू बोले-विनोबा के मन में क्या हैं, यह तो मैं नहीं कह सकूँगा, पर इतना कहता हूँ कि उनकी बात सही है। याने गाँव पर हम ऊपर से कोई चीज लाद नहीं सकेंगे। इस तरह उन्होंने अपने ढंग से जवाब दिया और उससे अपने को और बाबा को, दोनों को बचा लिया। गाँववाले अपनी योजना करें, इसका मतलब यह है कि अगर लड़ाई छिड़ जाय-भगवान करे ऐसा न हो-लेकिन मान लो कि छिड़ गयी, तो अनाज के भाव आसमान में चढ़ेंगे। भाव आसमान में चढ़ेंगे और आसमान से नीचे सिर्फ बम आयेंगे। उस हालत में अगर गाँव के पास अनाज नहीं रहा तो गाँव को कौन बचायेगा ? १९४३ में बंगाल में अकाल पड़ा। तीस लाख आदमी भूख के मारे मर गये। जेल में हम चर्चा करते थे और कहते थे, अंग्रेजों का राज्य है, उनके कारण यह सब हुआ है। आज अगर वैसी नौबत आ गयी तो अंग्रेजों के सिर पर पाप नहीं मढ़ सकेंगे। इसलिए मैंने येलवाल में देश के नेताओं के सामने कहा था कि ग्रामदान "डिफेन्स मेजर" है। देश के संरक्षण की तरकीब है। गाँव में दोयम चीजें न हों तो चलेगा। लेकिन जो चीजें पहले दर्जे की हैं, वे तो गाँव में होनी चाहिए। अभी चीन से झगड़ा चल रहा है। मान लो हिन्दुस्तान की सेना पीछे हट रही है, ऐसी खबर आयी तो सारा देश भयभीत हो जायगा। गाँव-गाँव अपने पाँव पर खड़े रहे, तभी देश सुरक्षित रहेगा।

मैं मानता हूँ कि हिन्दुस्तान की सेना काफी मजबूत है। चीन आक्रमण तो करेगा ही नहीं। पर अगर वह झगड़ा भी करता है तो उसका मुकाबला सेना कर सकेगी। लेकिन इतने से भी देश सुरक्षित नहीं रह सकेगा। देश को अगर सुरक्षित बनाना है तो दिल्ली से गाँव का प्लानिंग नहीं होना चाहिए। गाँव का ही अपना प्लानिंग होना चाहिए। गाँव पर वह जिम्मेवारी डालनी चाहिए। गाँव को वह अधिकार होना चाहिए। तभी तो देश बचेगा। बाकी लड़ाई के मौके पर आज की पंचवार्षिक योजना ताश के बंगले के मुआफिक गिरेगी। उस वक्त टिकेगा ग्रामराज और ग्रामस्वराज।

अंग्रेजों की बुद्धिमानी

पिछले महायुद्ध में यूरोप में 'इन्फ्लेशन' हुआ था। सिक्के ज्यादा हो गये थे, चीजों के भाव बढ़ गये थे। किसी देश में १०० परसेण्ट, किसीमें ३०० परसेण्ट, किसीमें ४०० परसेण्ट बढ़ गये थे। लेकिन इंग्लैण्ड यद्यपि लड़ाई के बीच में था, फिर भी वहाँ मुश्किल से १० से १५ परसेण्ट ही "इन्फ्लेशन" हुआ था। इसका कारण यह था कि अंग्रेजों ने अपने देश के अन्दर का इंतजाम ऐसा किया, जिससे लड़ाई के समय उथल-पुथल न करनी पड़ी। उस इंतजाम के लिए अगर हिन्दुस्तान का कब्जा छोड़ना पड़े तो उसे छोड़ने के लिए भी उन्होंने अपने मन की तैयारी कर ली थी। मुझे बचपन से घूमने की आदत है। एक बार मैं एक किले पर चढ़ रहा था। मेरा सामान मेरी पीठ पर बँधा हुआ था। हम कुछ गलत रास्ते से चढ़ रहे थे। ऐसी जगह पहुँचे थे कि ऊपर चढ़ना मुश्किल था और नीचे उतरना उससे भी मुश्किल था। तब मेरे पास जो बँधी हुई गठरी थी, वह मैंने नीचे फेंक दी। यह मैंने इसलिए किया कि उसको लेकर अगर मैं चढ़ता तो वह बच जाती, लेकिन मैं नहीं बचता। उसी तरह इंग्लैण्ड ने सोचा, यह बोझ ढोना मुश्किल है। अंग्रेजों में यह विशेष अक्ल है। अंग्रेजी भाषा जो दुनिया में फैली और प्रिय हुई, वह अंग्रेजों के गुणों के ही कारण, उनकी तपस्याके कारण। तो उन अक्लमंद लोगों ने उस समय पूरा-पूरा इंतजाम कर रखा था और "इन्फ्लेशन" बढ़ने नहीं दिया।

सेना की मर्यादा !

लोग पूछते हैं कि आप सेना के खिलाफ़ क्यों बोलते हैं ? आज चीन ने जो किया है, उसका मुकाबला करने के लिए सेना हमारे पास न होती तो हम क्या कर सकते थे ? मैं कहता हूँ, लोगों में भेद-भाव नहीं होते। अंधाधुन्ध कारोबार न चलता, देश में गुर्बत न होती, लोगों में आपस-आपस में द्वेष, वैरभाव न होता तो चीन कुछ भी नहीं कर सकता था। हमारे यहाँ भेदभाव हैं, अंधाधुन्ध कारोबार चलता है, गुर्बत है, तरह-तरह के मामले खड़े होते हैं, इस वास्ते वह हिम्मत करता है। हमारे देश में अगर ठीक व्यवस्था रहे तो क्या मजाल है उसकी ? मुझे पूछते हैं, सेना के बिना कैसा होगा ? मैं पूछता हूँ, सेना से क्या होगा ? मान लो, कल मुझपर कोई हमला करता है। मैं अहिंसक हूँ, पता नहीं कहाँ तक हूँ, लेकिन मैं वैसा दावा करता हूँ। दूसरों की हिंसा भी काफी सह लेता हूँ। परन्तु अगर कोई मेरे सिर पर या आँखों पर हमला करे तो मैं अपने बचाव के लिए अपने दोनों हाथ सामने करके उसको रोकता हूँ। यह अहिंसा में आता है, उसी तरह सिर्फ रोकने के लिए जितनी सेना चाहिए, उतनी सेना रहती है तो वह अहिंसा में आती है। उतनी सेना देश में रह सकती है, यह मैं मानता हूँ। पर अंदर की हालत कैसी रहेगी ? देश के नेता को उधर दुश्मन की चिन्ता—अगर पड़ोसी को हम दुश्मन मानने लगें तो—और इधर हरएक गाँव की चिन्ता करनी पड़ेगी तो उसकी क्या हालत होगी ? मौका आने पर क्षोभ-मुक्त चिन्तन नहीं हो सकेगा। क्षोभ-मुक्त चिन्तन तभी होगा, जब दिल में डर नहीं होगा और डर कब नहीं होगा ? जब गाँव-गाँव का अपना पूरा इंतजाम होगा। भगवद्गीता ने हमको बताया है—"युद्ध्यस्व विगतज्वरः"—युद्ध में ज्वर नहीं होना चाहिए। निर्भय होकर लड़ना चाहिए। जिनसे लड़ना है, उनको दुश्मन न समझें, पड़ोसी समझें। "जय-हिन्द" के बजाय "जय-जगत" की भावना दिल में रहे। गाँव-गाँव का पूरा इन्तजाम होना चाहिए। गाँव-गाँव अपने पाँव पर खड़े रहें। इसके बाद अगर लड़ना ही पड़ा तो अक्षुब्ध भाव से लड़ें। मगर याद रखें कि लड़ाई से देश की रक्षा नहीं होगी। उसके लिए अन्दर पूरा-पूरा इन्तजाम चाहिए। असली संरक्षता उसीसे होगी। ●●●

राजनीति और हिंसा से दुनिया का विश्वास उठ रहा है !

[उत्तरी राजस्थान के प्रमुख नगर गंगानगर में २८ व २९ नवम्बर को विनोबा का पड़ाव रहा। उनका यह आगमन न केवल गंगानगरवासियों व राजस्थान के लोगों के लिए ही आकस्मिक था, स्वयं विनोबा के दिमाग में भी पांच दिन पूर्व उसकी कोई कल्पना नहीं थी। इस बिना किसी पूर्व तैयारी की आकस्मिक यात्रा के कारण प्रचार व प्रदर्शन का जो ढोंग बड़े नेताओं की यात्रा के फलस्वरूप चलता है, वह नहीं हुआ और मुक्त भाव से हृदयों से हृदय का मिलन हुआ। अज्ञात संचरण के स्पष्ट लाभों की अनुभूति राजस्थान को मिली। गंगानगरवासियों ने विनोबा व उनके विचारों का अच्छा स्वागत किया। गंगानगरवासियों को संदेश देते हुए विनोबाजी ने जो विचार प्रस्तुत किये, वे यहाँ दिये जा रहे हैं। —सं०]

सियासतवाले समझें

गंगानगर में मैं अतिथि के रूप में आया हूँ। अतिथि की कोई आपसे अपेक्षा नहीं हो सकती। आपके दर्शनों में ही मुझे भगवान के दर्शन होते हैं और उतने से ही मुझे संतोष है।

गंगानगर हिन्दुस्तान के एक कोने में है, पर आपको तो समझना चाहिए कि दुनिया का हर गाँव दुनिया का मध्य बिन्दु है और दुनिया उसके इर्द-गिर्द है। पुराने जमाने में प्रशांत महासागर जापान और अमेरिका को अलग-अलग करनेवाला माना जाता था, परन्तु अब विज्ञान के चरम विकास से वही तोड़नेवाला जोड़नेवाला बन रहा है। वही प्रशांत महासागर उन दोनों देशों को पडोसी बना रहा है। जब विज्ञान के विकास के फलस्वरूप जड़ शक्तियाँ जोड़नेवाली बन रही हैं, तब आज का इन्सान और आज के सियासतदाँ (राजनीतिज्ञ) तोड़नेवाले बनेंगे तो क्या टिकेंगे ?

मैं इसीलिए राजनीतिज्ञों को 'नादाँ' कहता हूँ। वे समझते ही नहीं है कि काल-प्रवाह किधर जा रहा है। इसके लिए ही झगड़ते हैं कि आबू गुजरात में रहना चाहिए या राजस्थान में। अरे, अब जमाना ऐसा आयेगा कि कुल दुनिया की दौलत कुल दुनिया की बनेगी। गुजरात का पेट्रोल गुजरात का नहीं, भारत का नहीं, दुनिया का होगा। इससे कम आधार पर यह दुनिया टिकनेवाली नहीं है, लेकिन ये सियासतदाँ समझते ही नहीं। सामने खंभा होता है तो अंधे को तब मालूम होता है, जब वह उससे टकरा जाता है, यह आज स्थिति है।

जवानों से अपील

आज राजनीति से कोई मसले हल होनेवाले नहीं हैं। वे तो बढ़ने ही वाले हैं। इसलिए जवानों से मेरी अपील है कि वे सियासत में न पड़ें। वे रूहानियत और साइन्स की जोड़नेवाली शक्ति पहचानें। साइन्स के जमाने में हिंसा, राजनीति चल नहीं सकेगी। यदि वह चली तो मानव खत्म ही होनेवाला है। विज्ञान कह रहा है 'या तो एक हो जाओ या मिट जाओ।'

चन्द दिन पहले ख्रुश्चेव अमेरिका गया था। उन्होंने ठीक उसी भाषा में प्रस्ताव रखा, जिसमें बाबा बोलता है 'कुल शस्त्रास्त्र फेंक देने चाहिए, सेनाएँ खत्म कर देनी चाहिए'। जिसके पास दुनिया की सबसे ज्यादा शक्ति है, आज वह यह भाषा बोल रहा है तो अब हृदय-परिवर्तन किसका बाकी है ? हम लोगों का होना बाकी है, जो लाठियों से लड़ते हैं। गांधीजी के मरने के बाद जनरल मैकआर्थर ने, जो अभी-अभी शांतिवादी बने हैं, कहा : 'जब तक दुनिया गांधी की शरण नहीं जायगी, मसले हल नहीं होंगे'। इस सबपर से सोचना चाहिए कि दुनिया आज किधर जा रही है।

मुझे डर किससे है ?

ख्रुश्चेव ने जब प्रस्ताव रखा तो क्या वेद, उपनिषद, धम्मपद या बाइबिल पढ़कर रखा ? नहीं ! उसने अनुभव से माना कि शस्त्रशक्ति शिवशक्ति नहीं, मूढ़ शक्ति है, जिस किसीके पास चली जाती है, उसीकी हो जाती है। सज्जन-दुर्जन का भेद उसे नहीं। यदि ख्रुश्चेव को यह विश्वास हो जाता कि यह शक्ति कम्युनिस्टों के पास ही रहनेवाली है तो हिंसाशक्ति पर से उसका विश्वास कभी नहीं टूटता। ख्रुश्चेव का विश्वास अब हिंसाशक्ति से डिग गया है, उसे वे निरर्थक मानने लगे हैं। लोग कहते हैं कि ख्रुश्चेव ऐसी भाषा तो बोलने लगे हैं, लेकिन आचरण ? मेरा मानना है कि पहले मन में जो विचार आता है, वह वाणी द्वारा प्रकट होता है, फिर उससे कर्म निष्पन्न होता है। जो बात बोलने में आयी, वह कर्म में आने ही वाली है। अहिंसा पर श्रद्धा बैठी नहीं, पर हिंसा से उठ गयी है, ऐसी हालत में वे हैं। मैं अहिंसा का प्रेमी होने के नाते एटम और हाइड्रोजन बमों का स्वागत करता हूँ, क्योंकि वे अहिंसा के अधिक नजदीक हैं। संहार-शक्ति की जहाँ पराकाष्ठा हुई, वहाँ फिर संहार-शक्ति का संहार होना ही बाकी रहता है। इसलिए उससे मुझे कोई डर नहीं है। मुझे तो डर "लाठी, तलवार, चाकू" का है। जब तक मानव-हृदय नहीं बदलेगा, तब तक इनका उपयोग समाप्त नहीं हो सकता।

जमाने की गति

गौतम बुद्ध की २००० वर्ष बाद अब जयन्ती मनाने का क्रम शुरू हुआ है। मालूम होता है, गौतम बुद्ध कल ही पैदा हुए हैं। विश्व के अनन्तकाल में २००० वर्ष तो बिन्दु के समान ही हैं। गौतम ने हमको अहिंसा की बात बतलायी। उनके जमाने में लोग तलवार से लड़ते थे। हार होती थी, वह हिंसा शक्ति की नहीं, उसकी कमी की मानी जाती थी। इसलिए अच्छे से अच्छे शस्त्र बनाने पर जोर दिया जाता था। इसीलिए लोग सेना और शस्त्रों की शक्ति बढ़ाते गये। यह क्रम बराबर चलता गया और आज हम हाइड्रोजन बम और बैलेस्टिक वेपन्स तक पहुँचे हैं। अब अहिंसा-शक्ति के चरम विकास के बाद यह स्थिति पैदा हुई है कि लोगों का हिंसा से ही विश्वास ढह रहा है याने बुद्ध ने जो अहिंसा की बात २००० वर्ष पहले कही थी, उसकी ओर आज जमाना जा रहा है। बुद्ध ने कल जो कहा था, आज हम उसे करने जा रहे हैं। इसपर से हमें समझना चाहिए कि अब राजनीति और हिंसा निकम्मी चीजें हैं। उनके स्थान पर प्रेम, करुणा की ताकत प्रकट करनी है। ० ० ०

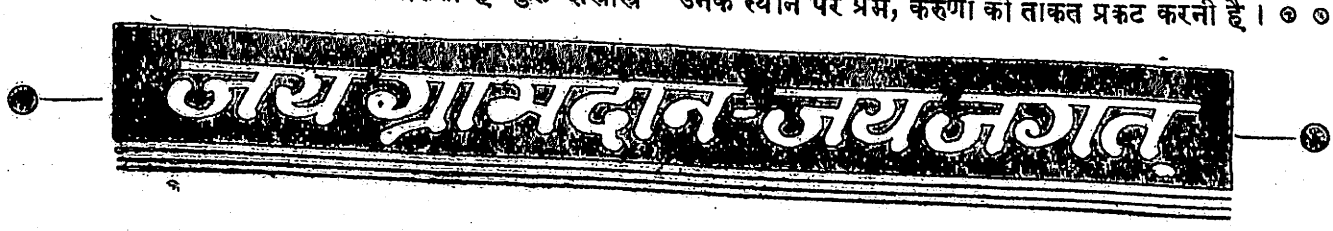

प्रार्थना-प्रवचन गुरुहरसहाय (पंजाब) २२-११-'५९

प्रेम से दिलों को जोड़ना सीखें

आज भारत में हर जगह मसले हैं। इन मसलों का हल हुए बिना गाँवों की ताकत नहीं बनेगी। पर यह हल कैसे हों? प्रम से। सभी लोगों को एक-दूसरे के साथ प्यार करना चाहिए। मालिकों को मजदूरों के साथ प्यार करना चाहिए और जमीन-वालों को बेजमीनवालों के साथ। जमीनवाले मालिक बेजमीनों को अपनी जमीन दें। जब एक के हित के खिलाफ दूसरे का हित होता है तो कभी उन्नति नहीं होती। सबको एक-दूसरे से प्यार करना सीखना चाहिए अगर गाँव के लोग बचेंगे तो देश तथा शहर भी बचेंगे। मालिक अपनी जमीनें बेजमीनों को दें, तभी दोनों के दिल जुड़ सकते हैं।

दिल जोड़ने का काम कई तरीकों से होता है। ऊँच-नीच का भेद मिटाना दिल जोड़ने का एक काम है। मालिकों द्वार बेजमीनों को जमीन देना भी दिल जोड़ने का काम है। सर्वोदय-पात्र का काम भी दिल जोड़ने का काम है। सब मिलकर एक साथ प्रार्थना करना जातिभेद मिटाने का काम है। सबको प्रेम से एक बनाने के लिए और एक-दूसरे के सुख-दुःखों में शामिल करने के लिए मैं ये तमाम तरीके अपना रहा हूँ। आज देखा तो यह जाता है कि भगवान की प्रार्थना के मौके पर सब अलग-अलग हो जाते हैं। इस तरह धर्म ही एक-दूसरे को तोड़ने-वाले बन रहे हैं। इसका मतलब यह होता है कि भगवान ही तोड़नेवाला बन गया है, जो फिरकों में बाँटता है। क्या तोड़ने के लिए भगवान की जरूरत थी? लेकिन इस जमाने में यह हो रहा है।

पुराने जमाने में गुरुनानक और कबीर ने एक बनने क उपदेश दिया। लेकिन सियासत ने भेद ही बढ़ाया है। जाति-भेद मर रहा था, पर सियासत ने ही इसे पुनरुज्जीवित किया है राममोहन राय से गांधीजी तक और दयानन्द से मुन्शीराम तक सबने जातिभेद पर प्रहार किये। फिर भी आज जातिभेद, फिरके, धर्म और सियासत के फिरके बढ़ रहे हैं। गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के अन्दर ही अन्दर झगड़े बढ़ रहे हैं। ऐसे भेद और झगड़े बढ़ते रहें और एक न बनें तो अब हम टिक नहीं सकेंगे। अगर आप 'जय जगत्' नहीं मानते और एक नहीं होते तो ये झगड़े खत्म नहीं होंगे। जबतक ये जाति, भाषा, प्रांत, पंथ आदि के झगड़े खत्म नहीं होंगे, हम बच नहीं सकेंगे। इसी कारण हम सब मिलकर प्रार्थना करते हैं। हमारी प्रार्थना में स्त्री-पुरुष, हिन्दू, सिख, मुसलमान आदि सभी होते हैं। सबको साथ मिलकर प्रार्थना करने का यह एक मौका है और यही एक बनने का सबसे अच्छा मौका है।

●●●

संपादक की ओर से

पाठकों से निवेदन

जैसा कि सभी लोगों को विदित है, पू. विनोबाजी के अज्ञात संचार के कारण उनके प्रवचन नियमित रूप से हमें नहीं मिल पा रहे हैं। इस स्थिति में शीघ्र ही कोई विशेष परिवर्तन होगा, ऐसी आशा भी नहीं है। अतः विवश होकर हमें 'विनोबा-प्रवचन' का प्रकाशन फिलहाल १ जनवरी '६० से स्थगित करना पड़ रहा है।

पिछले वर्ष हमने विनोबाजी के प्रवचन पाठकों तक जिस क्रम से पहुँचाये, उसकी तारीख-वार सूचि भी हम शीघ्र ही तैयार कर रहे हैं। २२ सितम्बर '५८ को विनोबाजी ने गुजरात में प्रवेश किया और २२ सितम्बर '५९ को कश्मीर-यात्रा समाप्त करके पठानकोट पहुँचे। इस बीच के लगभग सभी उपलब्ध प्रवचन प्रकाशित हुए हैं। लेकिन ये प्रवचन तारीखों की दृष्टि से क्रमबद्ध नहीं हैं। अतः हम जो सूचि तैयार कर रहे हैं, उसमें किस तारीख का प्रवचन किस अंक में छपा है, यह स्पष्ट जानकारी रहेगी। जिन पाठकों को इस सूचि की आवश्यकता हो और जो विनोबा-प्रवचन की पूरी फाइल बँधवाकर रखनेवाले हों, वे पत्र लिखकर यह सूचि तथा विनोबा-प्रवचन की साल भर की फाइल सर्व-सेवा-संघ से मंगवा लें।

प्रस्तुत अंक इस वर्ष का अन्तिम अंक है। इसके बाद इस पत्र का प्रकाशन तब तक स्थगित रहेगा, जब तक प्रवचन मिलने की नियमित व्यवस्था नहीं हो जायगी। आशा है, हमारे कृपालु पाठक इसके लिए हमें क्षमा करेंगे।

अब तक की भूलों के लिए क्षमा माँगता हुआ।

विनीत

श्रीकृष्णदत्त भट्ट

अनुक्रम

१. हिन्दुस्तान की सारी संस्कृति शांति का उद्घोष करती है
सिरसा १६ दिसंबर '५९ पृष्ठ ९२१
२. गो-सेवा के लिए जीवन-पद्धति में अन्तर करना आवश्यक
सिरसा १६ दिसम्बर '५९" ९२४
३. गो-सेवा के लिए हमें अपने मन को विशाल बनाना होगा
सिरसा १७ दिसम्बर '५९ „ ९२५
४. युद्ध्यस्व विगतज्वरः
सिरसा १७ दिसंबर '५९ " ९२७
५. राजनीति और हिंसा से दुनिया का विश्वास उठ रहा है
गंगानगर २८ नवम्बर '५९ „ ९३१
६. प्रेम से दिलों को तोड़ना सीखें
गुरुहरसहाय २२ नवंबर '५९ „ ९३२

श्रीकृष्णदत्त भट्ट, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ द्वारा भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में सम्पादित, मुद्रित और प्रकाशित। गोलघर, वाराणसी (उ० प्र०) फोन : १३९१
तार : 'सर्व-सेवा', वाराणसी।